



Date:01-02-22

The supreme failure

By failing to decide key constitutional cases in a timely way, the apex court has not acted as the 'sentinel on the qui vive'

Prabhash Ranjan is Professor and Vice Dean, Jindal Global Law School, O P Jindal Global University.

American lawyer James M. Beck described the U.S. Supreme Court as a lighthouse whose gracious rays of justice and liberty light up the troubled surface of the water, making America a free and strong nation. M. Jagannadha Rao, a former Indian Supreme Court judge, citing Beck, said that what is true of the American Supreme Court is equally true of the Indian Supreme Court. In the 73rd year of our Republic, it is time to put this belief to test especially in the wake of mounting majoritarianism and surging ethnocultural nationalism.

In the last few years, the Indian Supreme Court has delivered some judgments of far-reaching consequence. It declared the right to privacy a fundamental right; decriminalised consensual sexual conduct between adults of the same sex; recognised transgender persons as the third gender; and outlawed triple talaq. These decisions shore up the belief in republican values like liberty and equality reified in our Constitution.

Black marks

Notwithstanding these bright spots, there are several black marks on the Supreme Court's record. The Vidhi Centre for Legal Policy has developed an excellent comprehensive tracker of all the pending cases before the five-judge, seven-judge, and nine-judge constitution benches of the Supreme Court. According to this tracker, there are 25 main cases pending before the five-judge constitution bench and five cases each pending before the seven-judge and nine-judge benches. These cases relate to significant constitutional and other legal matters that can have serious repercussions on the fundamental rights of ordinary citizens and our core republican values. Related to these main cases, there are more than 500 connected cases. These cases cannot be decided till the legal issues in the main cases before the constitutional benches are addressed. Some of the important cases gathering dust in the Supreme Court are as follows.

First, a deluge of petitions was filed before the Supreme Court challenging the constitutionality of the Citizenship (Amendment) Act, 2019, that provides non-Muslim communities from Bangladesh, Pakistan, and Afghanistan a fast-track route to Indian citizenship. More than two years later, the matter continues to languish in the apex court. Second, innumerable petitions have been filed challenging the Presidential Order of August 5, 2019 that effectually diluted Article 370 of the Constitution and split Jammu and

Kashmir into two Union Territories. To date, the court has done precious little to decide this vexed question of law.

Third, petitions challenging the constitutionality of the Constitution (One Hundred and Third Amendment) Act, 2019 that provides reservations in public educational institutions and government jobs for economically weaker sections are also languishing in the Supreme Court. It is shocking that the case has not been heard since August 5, 2020, while the law has already been implemented.

Fourth, a momentous case known as Vivek Narayan Sharma v. Union of India is in the Supreme Court for more than five years. This case relates to the legality of demonetisation of all ₹500 and ₹1,000 notes aimed at curbing black money. It was the most audacious economic experiment in the life of the Indian republic that went horribly wrong because more than 99% of the cash came back into the banking system, according to the Reserve Bank of India. Appallingly, the Supreme Court hasn't heard this case since September 2, 2019.

Fifth, the Supreme Court has failed to accord proper hearing in the last four years to the constitutional challenge to the electoral bonds scheme. This scheme strikes at the heart of our polity because anonymous funding of political parties is the root cause of corruption in public life.

Constitutional duty

Granville Austin, a distinguished constitutional scholar, said, “the Supreme Court is ...custodian of the equality under the law that lies at the heart of the country's constitutional democracy. Unless the Court strives in every possible way to assure that the Constitution, the law, applies fairly to all citizens, the Court cannot be said to have fulfilled its custodial responsibility”. By abjectly failing to decide key constitutional cases in a time-bound manner, the Supreme Court has not acted as the “sentinel on the qui vive”. The Court should perform its constitutional duty of being a formidable counterforce to brute majoritarianism. The power of judicial review that the Chief Justice of India, N.V. Ramana, calls as critical to democracy should be exercised assiduously. Or else, India's hard-fought constitutional democracy would be in grave peril.



Date:01-02-22

फेल हो गया उदारीकरण, नया मॉडल तलाशना होगा

संपादकीय

साल 1990 में अंगीकार किया गया आर्थिक उदारीकरण का मॉडल भारत में फेल हो गया है, क्योंकि पूंजी का प्रवाह ऊपर के चंद हाथों में सिमटता गया। मार्केट सेंटिमेंट खराब न हो इस डर से लोकतांत्रिक सरकारों ने वित्तीय सुधार के नाम पर

टैक्स में राहत दी, वेल्थ टैक्स खत्म किया और तमाम बेल-आउट पैकेज देना शुरू किया। एफआरबीएम एकट लाकर खर्च के खिलाफ अपने हाथ बांध लिए। इस बीच पेट्रोल, डीजल और अन्य सामान्य जरूरत की वस्तुओं पर जीएसटी बढ़ने से आम-जन खासकर किसान पर नया बोझ डाला गया। गरीब और गरीब होता गया। एक उद्योगपति की कोरोना काल में संपदा आठ गुना बढ़ गई, जबकि 84% लोगों की आय घट गई। देश के डॉलर अरबपतियों की संख्या फ्रांस, स्वीडन और स्विट्ज़रलैंड के कुल अरबपतियों से ज्यादा हो गई। एक ही रास्ता है। सरकार अपनी आय पेट्रोल, डीजल के दाम बढ़ाकर और सब्सिडी कम करके नहीं बल्कि उच्च वर्ग पर टैक्स लगा कर गरीबों को राहत देने में लगाए। संविधान ने तो कल्याणकारी राज्य का वादा किया था लेकिन आज भी केन्द्रीय बजट का मात्र 3.54 प्रतिशत स्वास्थ्य के मद में खर्च होता है जबकि ब्राजील 9.51, दक्षिण अफ्रीका 8.25 और चीन 5.35 खर्च करता है। नतीजतन गरीब और मध्यम वर्ग को अपनी आय का बड़ा भाग स्वास्थ्य पर खर्च करना पड़ता है जिसके कारण मध्यम वर्ग दुबारा गरीबी की गर्त में पहुंच जाता है। कोरोना की तीन लहरों ने चौतरफा मार की है लिहाजा सरकार को अपने राहत कार्य और सब्सिडी में खर्च जारी रखना होगा। सरकार ने चार साल पहले आयुष्मान भारत के तहत बड़े जोर-शोर से गरीबों के लिए पांच लाख रुपए तक का स्वास्थ्य बीमा शुरू किया लेकिन सरकारी अस्पतालों की जर्जर हालत और निजी अस्पतालों द्वारा नकारे जाने से गरीबों को इसका लाभ नहीं मिल पा रहा है।



दैनिक जागरण

Date:01-02-22

वैवाहिक जीवन में हस्तक्षेप के खतरे

दीपिका नारायण भारद्वाज, (लेखिका वृत्तचित्र फिल्म निर्माता हैं)



इन दिनों दिल्ली उच्च न्यायालय की एक पीठ में भारतीय दंड संहिता (आइपीसी) में पतियों को दुष्कर्म के आरोपों से अपवादस्वरूप प्रदान की जाने वाली छूट पर जोरदार बहस हो रही है। भारत में दुष्कर्म के अपराध को परिभाषित करने वाली आइपीसी की धारा 375 में निहित अपवाद कहता है कि 'अपनी पत्नी के साथ पुरुष द्वारा किया जाने वाला संभोग पत्नी की उम्र पंद्रह वर्ष से अधिक होने की दशा में दुष्कर्म नहीं माना जाएगा।' इसी अपवाद को आरआइटी फाउंडेशन, आल इंडिया डेमोक्रेटिक वूमन एसोसिएशन और दो व्यक्तियों ने दिल्ली हाई कोर्ट में चुनौती दी है। दूसरी ओर दिल्ली सरकार, हृदय फाउंडेशन नामक गैर सरकारी संस्था और मेन वेलफेयर ट्रस्ट के अमित लखानी तथा ऋत्तिक बिसारिया इस अपवाद को खत्म करने का विरोध कर रहे हैं। भारत में पति और पत्नी के बीच यौन संबंधों को दुष्कर्म के दायरे में लाए जाने पर सबसे ज्यादा जताई जा रही चिंताओं में से एक यह है कि दुर्भावना रखने वाली

पत्नियों द्वारा अपने पतियों और उनके परिवारों को परेशान करने के लिए दुष्कर्म के झूठे आरोप लगाए जा सकते हैं। हालांकि यह एक जायज चिंता है, लेकिन याचिकाकर्ताओं और यहां तक कि खंडपीठ ने भी इसे यह कहते हुए दबाने की कोशिश की है कि 'हर कानून का दुरुपयोग किया जा सकता है, लेकिन यह कानून नहीं लाने का आधार नहीं हो सकता।' यह तर्क देखने में तो जायज लगता है, लेकिन अगर हम वास्तव में प्रत्येक नागरिक के समान अधिकारों के बारे में चिंतित हैं तो एक नया कानून लाते समय जमीनी हकीकत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

इस मामले में याचिकाकर्ताओं ने वैवाहिक दुष्कर्म को कानूनी तौर पर अपराध घोषित करवाने के लिए मिसाल के तौर पर विभिन्न देशों के कानूनों को सामने रखा है, लेकिन उन राष्ट्रों में झूठी गवाही देने, झूठे आरोप लगाने और गलत तरीके से कैद करवाने के विरुद्ध लागू मजबूत सुरक्षा उपायों का जिक्र तक नहीं किया है। जब भारत में पुरुषों पर झूठे मामले दर्ज करने वाली महिलाओं पर मुकदमा चलाने की बात आती है तो ये याचिकाकर्ता गायब हो जाते हैं। आपने पिछली बार कब किसी महिला को अपने पति और उसके परिवार वालों पर दहेज उत्पीड़न का झूठा आरोप लगाने के अपराध में जेल जाते हुए सुना था? कब किसी ऐसे पुरुष को पर्याप्त मुआवजा दिए जाने के बारे में सुना था जिसे दुष्कर्म के झूठे मुकदमे में फंसा दिया गया था? शायद इन दोनों ही सवालों का जवाब कभी नहीं मिलेगा।

वर्ष 2005 में सुप्रीम कोर्ट ने दहेज उत्पीड़न कानूनों के दुरुपयोग को 'कानूनी आतंकवाद' करार दिया। अंततः वर्ष 2014 में उसने दहेज उत्पीड़न के मुकदमों में पतियों की तत्काल गिरफ्तारी नहीं किए जाने के दिशानिर्देश पारित किए। उसके बाद से वैवाहिक विवादों में प्राथमिकी दर्ज करते समय दहेज उत्पीड़न के साथ घरेलू हिंसा और अप्राकृतिक यौन शोषण की धाराएं भी जुड़ाई जाने लगीं, ताकि किसी भी तरह से महिला के पति और उसके परिवार की गिरफ्तारी करवाई जा सके।

इन दिनों वैवाहिक विवादों में दर्ज शिकायतों में विभिन्न आपराधिक धाराओं का एक विशेष और खतरनाक मिश्रण तैयार किया जाने लगा है। जैसे-पूरे परिवार के खिलाफ दहेज और घरेलू हिंसा का आरोप, पति के खिलाफ अप्राकृतिक यौन संबंध का आरोप, ससुर के खिलाफ दुष्कर्म का आरोप और देवर के खिलाफ छेड़छाड़ का आरोप लगाए जाने लगे हैं। सिर्फ एक पंक्ति में लिख दिए गए आरोप में ही उसके पति और उसके पूरे परिवार को तत्काल गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया, भले ही ऐसा कोई अपराध कभी हुआ ही न हो। कुछ पुरुषों ने 90 दिन जेल में बिताए हैं, जबकि कुछ अन्य ने छह महीने तक बिताए हैं। ये वे लोग हैं जिन्हें केवल दहेज का मामला होने पर अदालत से जमानत अवश्य मिल जाती।

अगर वैवाहिक दुष्कर्म के नाम से एक नया कानून बना दिया जाता है तो कोई निर्दोष पुरुष यह कैसे साबित करेगा कि उस पर पांच साल पहले दुष्कर्म का झूठा आरोप अब लगा रही उसकी पत्नी झूठ बोल रही है? अगर कोई महिला दुष्कर्म की शिकायत करती है तो पुलिस एफआइआर दर्ज करने से इन्कार नहीं कर सकती है। वैवाहिक दुष्कर्म के मामलों में वह अपराध हुआ भी था या नहीं, यह पता लगाने के लिए पुलिस क्या प्रारंभिक जांच करेगी? आज एक महिला को दुष्कर्म का मुकदमा दर्ज करवाने के लिए अपने बयान के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। आरोपी द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए किसी भी सबूत पर पुलिस शायद ही कभी विचार करती है। 2013 के बाद से दुष्कर्म कानूनों का घोर दुरुपयोग हुआ है। वैवाहिक विवादों को लेकर लोग बेहद निचले नैतिक स्तर तक गिर गए हैं। यहां तक कि वे अपने बच्चों को भी नहीं बख्श रहे हैं। महिलाओं द्वारा अब यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (पोक्सो) का दुरुपयोग तक किया जाने लगा है ताकि पति और उसके परिवार को बर्बाद किया जा सके।

ऐसे परिदृश्य में यह कहना कि किसी कानून का दुरुपयोग किया जाना उस कानून को न लाने का आधार नहीं हो सकता है-उन व्यक्तियों विशेष रूप से पुरुषों के अपार दुख, आघात और आजीवन भोगे जाने वाले दुष्परिणामों की घोर उपेक्षा है, जिन पर रोजाना सैकड़ों की संख्या में ऐसे झूठे आरोप लगाए जा रहे हैं। अगर हम महिलाओं की गरिमा की रक्षा करने की बात कर रहे हैं तो हमें ऐसे जघन्य और कुत्सित झूठे आरोपों से पुरुषों की गरिमा की रक्षा करने की भी बात करनी होगी। संविधान लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करता है। समय आ गया है कि हमारे राजनेता और न्यायपालिका भी ऐसा न करें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:01-02-22

अखिल भारतीय सेवाओं की अवधारणा की हो समीक्षा

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी शिकायत करने का कोई भी अवसर गंवाने से नहीं चूकती हैं। खबर है कि एक ऐसा अवसर फिर उनके हाथ लगा और उन्होंने इसे हाथ से जाने नहीं दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने दूसरे राज्यों के मुख्यमंत्रियों को भी उनके साथ मिलकर विरोध जताने का मौका दे दिया है। ममता ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को दो पृष्ठों का एक पत्र लिखा है। इस पत्र में उन्होंने कहा है कि केंद्र को राज्यों से भारतीय प्रशासनिक सेवा (आईएसएस) के अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर बुलाने का अधिकार नहीं है। उन्होंने कहा कि केंद्र ने आईएसएस (कैंडर) नियम, 1954 में संशोधन का प्रस्ताव दिया है जिससे वह इन अधिकारियों को केंद्र में प्रतिनियुक्ति के लिए बुला सकता है। ममता ने कहा कि केंद्र को इस प्रस्ताव पर आगे नहीं बढ़ना चाहिए क्योंकि यह देश के संविधान की मूल भावना के खिलाफ जाता है।

मैं आईएसएस (कैंडर) नियम, 1954 में वर्णित बातों का उल्लेख नहीं करूंगा कि इनमें प्रयुक्त शब्दों को समझना सरल नहीं है। बस इतना कहना काफी है कि प्रस्तावित संशोधन के बाद अधिकारी या जहां वह नियुक्त है उस राज्य के पास प्रतिनियुक्ति के संबंध में केंद्र सरकार के आग्रह को खारिज करने का अधिकार नहीं होगा। खबरों के अनुसार ममता ने प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में कहा है कि अगर केंद्र प्रस्तावित संशोधन के साथ आगे बढ़ता है तो इससे राज्यों के प्रशासकीय कार्यों पर असर होगा। पत्र में कहा गया है कि यह संशोधन देश के संविधान में वर्णित संघीय ढांचे की भावना के उलट है। हमारा संविधान काफी विचित्र है। हमारा संविधान भी एकात्मक एवं संघीय है और इस बात पर निर्भर करता है कि आप किस दिन इसके किस रूप को अधिक महत्व देते हैं। ऐसे कई मामले उठते रहते हैं जिन पर राज्य संविधान के संघीय ढांचे का हवाला देते हुए केंद्र के कदमों का विरोध करते हैं।

पश्चिम बंगाल में करीब 270 आईएसएस अधिकारी हैं मगर इनमें 2021 तक केवल 11 केंद्र सरकार के साथ काम कर रहे थे। इससे यह संकेत नहीं मिलता है कि इन अधिकारियों से राज्य सरकार ने उनकी इच्छा पूछी थी। अगर ऐसा होता तो इनमें कम से कम 15-17 प्रतिशत अधिकारी केंद्र में प्रतिनियुक्ति पर कार्य करते दिखते। इतनी कम संख्या में राज्य से

आईएएस अधिकारियों का प्रतिनियुक्ति पर होना यह दर्शाता है कि पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री देश के संघीय ढांचे में सहयोग नहीं कर रही हैं।

वर्तमान व्यवस्था के तहत केंद्र आईएएस अधिकारियों की नियुक्ति करता है और विभिन्न राज्यों में उन्हें प्रशासकीय जिम्मेदारियां संभालने के लिए भेजता है। इस तरह इन अधिकारियों को धुरियों के इर्द-गिर्द घूमना पड़ता है। अखिल भारतीय सेवा का यह एक महत्वपूर्ण एवं केंद्रीय प्रावधान है। अगर ऐसा है तो इन अधिकारियों का मुख्यमंत्रियों के कब्जे में रहना अफसोस की बात है। भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) के मामले में तो यह बात और सच है। आईपीएस अधिकारी जिस राज्य में पदस्थापित होते हैं उसी राज्य सरकार के निर्देशों का आंख मूंदकर पालन करते हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा की तरह ही यह सेवा भी अखिल भारतीय सेवा का ही हिस्सा है। राज्यों के और इसके आईएएस अधिकारियों के अधिकार स्पष्ट रूप से परिभाषित किए गए हैं। राज्य और अधिकारी दोनों ही केंद्र के प्रतिनियुक्त संबंधी निर्देश मानने से इनकार कर सकते हैं। राज्य कह सकता है कि वह अधिकारियों को नहीं जाने दे सकता क्योंकि इससे प्रशासकीय कार्य प्रभावित होंगे, वहीं अधिकारी भी कह सकते हैं कि वे जहां हैं वहीं ठीक हैं।

इस विचित्र रवैये का ही नतीजा है कि पिछले कई वर्षों खासकर, 2015 से केंद्र में संयुक्त सचिव के स्तर पर अधिकारियों की कमी है। पेशेवर रूप से सक्षम आईएएस अधिकारियों की कमी से स्थिति और बिगड़ गई है। इस स्थिति के लिए केंद्र एवं राज्य दोनों ही जिम्मेदार हैं।

यह स्पष्ट नहीं है कि बिना किसी विकल्प के अधिकारियों के स्थानांतरण से सक्षमता एवं सत्य-निष्ठा से जुड़ी समस्याएं दूर होंगी। इन तमाम बातों पर विचार करने के बाद दो गंभीर एवं दीर्घ अवधि के विषयों का समाधान खोजने का यह एक अच्छा अवसर है। इनमें एक विषय है अखिल भारतीय सेवा की अवधारणा और दूसरा है एक आईएएस अधिकारी की सत्य-निष्ठा, क्षमता और निर्णय लेने की शक्ति। वास्तविकता यह है कि अखिल भारतीय सेवा का मकसद इस सेवा में निहित वास्तविकता से मेल नहीं खाता है। इस वजह से इस अवधारणा पर व्यापक तौर पर विचार करने की जरूरत है। जहां तक अधिकारी की सत्य-निष्ठा और तर्क शक्ति का सवाल है तो इसमें एक व्यक्तिगत पसंद-नापसंद का मामला है और दूसरा काफी हद तक शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

मगर इनमें सभी भविष्य का विषय हैं। अगर वर्तमान स्थिति की बात करें तो केंद्र के पास अब कोई विकल्प नहीं रह गया है। सरकार ने केंद्र में संयुक्त सचिव के स्तर पर अधिकारियों की कमी पूरी करने के लिए अन्य सेवाओं से अधिकारियों की सेवाएं ली थी। यह व्यवस्था कुछ दिन तक जरूर चली मगर अब केवल इसके भरोसे प्रशासन नहीं चलाया जा सकता। प्रतिनियुक्ति के नियमों में संशोधन के विषय पर फिलहाल हमें इंतजार करना होगा।

प्रधानमंत्री ने देश में पल-बढ़ रहे सबसे बड़े रोग भ्रष्टाचार को लेकर चिंता जाहिर की है और फिर से देशवासियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। मगर सच यह है कि इस समस्या से देश लंबे समय से पीड़ित है और इसका खमियाजा आखिरकार जनता को उठाना पड़ा है। स्वाभाविक ही इसका सीधा असर देश के विकास पर पड़ा, जिसके आईने में हम पिछले सात दशक से ज्यादा के आजादी के सफर को आंकते हैं।

सवाल है कि आखिर कौन-सी वजहें रहीं कि तमाम जद्दोजहद के बावजूद लंबे समय से यह समस्या न केवल ज्यों की त्यों बनी है, बल्कि कई स्तरों पर पहले के मुकाबले जटिल भी हुई है। क्या सरकार से लेकर आम लोगों के भीतर भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने की इच्छाशक्ति में कमी रही या दायित्वबोध का अभाव रहा, जिसके चलते आज भी इस पर फिक्र जतानी पड़ती है? प्रधानमंत्री ने भी यह कहा कि भ्रष्टाचार दीमक की तरह देश को खोखला करता है और ऐसे में हमें अपने कर्तव्यों को प्राथमिकता देते हुए मिल कर इससे शीघ्र मुक्ति पानी है। इसके लिए आने वाले दशकों तक या अनिश्चितकाल तक इंतजार करने की जरूरत नहीं है।

एक मुश्किल यह है कि देश में ऐसे तमाम लोग हैं, जो भ्रष्टाचार को एक गंभीर समस्या मानते हैं, उसके पीड़ित भी हैं, लेकिन लंबे समय से इसका सामना करने की वजह से शायद वे इसके अभ्यस्त हो गए हैं और इसीलिए इसके प्रति उदासीन दिखते हैं। हालांकि देश की ज्यादातर आबादी इस पर लगाम लगाने के लिए ठोस कदम उठाने की अपेक्षा करती है। इसके समांतर आज की युवा पीढ़ी न केवल समूचे तंत्र में गहरे पैठे भ्रष्टाचार को बाकी समस्याओं की जड़ मानती है, बल्कि समय पर उचित प्रतिक्रिया भी देती है। चाहे इस पर राय जाहिर करना हो, किसी रूप में भ्रष्ट व्यवहार के खिलाफ जूझना हो या फिर इसके अंत के लिए आंदोलनों में हिस्सा लेना हो। शायद यही वजह है कि प्रधानमंत्री ने युवाओं से भी उम्मीद जाहिर की है। उन्होंने कहा कि भ्रष्टाचार को खत्म करने का काम हम सभी देशवासियों को, आज की युवा पीढ़ी को मिल कर करना है। इसके लिए बहुत जरूरी है कि हम अपने कर्तव्यों को प्राथमिकता दें।

दरअसल, इस कर्तव्य भाव की अनदेखी के चलते भ्रष्ट मानसिकता वाले लोग अपने दायित्व की उपेक्षा करके कदाचार में लिप्त होते हैं और जो सेवा व्यवस्थागत तौर पर जनता के अधिकार के तौर पर तय की गई होती है, उसे हासिल करने के लिए लोगों को अवैध तरीके से पैसे चुकाने से लेकर कई स्तरों पर परेशान होना पड़ता है। यह मुश्किल केवल निचले स्तर पर नहीं है, बल्कि समूचे तंत्र में हर ऊपरी सीढ़ी पर भ्रष्टाचार अपने जटिल स्वरूप में और गंभीर होता चला जाता है। सवाल है कि आखिर क्या वजह है कि आजादी के इतने साल बाद भी देश इस समस्या के बहुस्तरीय स्वरूप में उलझा हुआ है और इससे पार पाना एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। हाल में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की ओर से जारी भ्रष्टाचार अवधारणा सूचकांक में भारत को दुनिया भर के 180 देशों की सूची में 85वां स्थान मिला है। जाहिर है, यह तस्वीर कोई संतोषजनक नहीं है और देश में सत्ता से लेकर विपक्षी दलों और जनता तक के स्तर पर सभी पक्षों को सक्रिय रूप से भ्रष्टाचार के खिलाफ ठोस कदम उठाना होगा। खासतौर पर सत्ताधारी पार्टियों के भीतर इस बेहद जटिल समस्या से निपटने के लिए ईमानदार इच्छाशक्ति की जरूरत है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:01-02-22

‘दीमक’ को खत्म करना होगा

संपादकीय



प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की यह बात सौ फीसद सही है कि भ्रष्टाचार दीमक की तरह देश को खोखला करता है और हमें मिलकर जल्द-से-जल्द इससे मुक्ति पानी है। इस सप्ताह के ‘मन की बात’ कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने कहा कि, देश तेजी से आगे बढ़ रहा है, लेकिन भ्रष्टाचार दीमक की तरह देश को खोखला करता है। उससे मुक्ति के लिए 2047 तक का इंतजार क्यों किया जाए? यह काम हम सभी देशवासियों को, आज की युवा-पीढ़ी को मिलकर करना है, बिना वक्त गंवाए करना है और इसके लिए बहुत जरूरी है कि हम अपने कर्तव्यों को प्राथमिकता दें। जहां कर्तव्य निभाने का एहसास होता है, कर्तव्य सर्वोपरि होता है, वहां भ्रष्टाचार फटक भी नहीं सकता। प्रधानमंत्री ने यह बात उन्हें प्रयागराज की एक बालिका के अपने सपने के बारे में लिखी बातों के जवाब में कही। कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने आजादी के अमृत वर्ष के मौके

पर उन्हें दुनिया भर से बच्चों के लिखे पत्रों और भावी भारत के बारे में उनकी आकांक्षाओं का उल्लेख किया। दूर क्रोएशिया के जगरेब से लेकर प्रयागराज सहित पूरे भारत के बच्चों की आकांक्षाओं का प्रधानमंत्री ने जिक्र किया। गुवाहाटी की एक छात्रा की तमन्ना है कि वो आजादी के 100वें साल में एक ऐसा भारत देखे, जो दुनिया का सबसे स्वच्छ देश हो, आतंकवाद से पूरी तरह से मुक्त हो, शत-प्रतिशत साक्षर देशों में शामिल हो, जहां कोई सड़क दुर्घटना नहीं हो, और टिकाऊ तकनीक से खाद्य सुरक्षा करने में सक्षम हो। प्रधानमंत्री ने कहा जब युवा पीढ़ी इसे लक्ष्य बनाकर काम करेगी, तो भारत को जैसा बनाना चाहती है, वैसा जरूर होगा। चेन्नई के एक छात्र की इच्छा है कि चंद्रमा पर भारत का अपना शोध केंद्र हो, और मंगल पर भारत, मानव आबादी को बसाने का काम शुरू करे।

प्रधानमंत्री ने इस बात पर संतोष जताया कि अब तक करीब साढ़े चार करोड़ बच्चों ने कोरोनारधी टीके की खुराक ले ली है। भारत में बने टीके पर देशवासियों के भरोसे को उन्होंने बड़ी ताकत बताया। उन्होंने बच्चों के साथ आजादी के संघर्ष, भारत के वीर जवानों, जनसेवा में लगे अनाम रह जाने वाले लोगों और पर्यावरण के बारे में भी बातें साझा कीं। इन सब के बीच यह बड़ा अटपटा लगता है कि देश के बारे में चिंता जता रहे किसी भी बच्चे या युवा ने देश के कलुषित होते जा रहे माहौल पर चिंता न जताई हो, देश के नायकों को बच्चों को खुलकर अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यही सच्चे लोकतंत्र की पहचान है।